सोवियत सरकार ने जो नई नीति अपनाई है उससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। लोगों की स्टालिन और स्टालिनवाद के प्रति श्रद्धा कम होती जा रही है। ऐसा लगता है कि जो कुछ उन्होंने किया है राजनैतिक दृष्टि से ठीक किया है। उन्हें इस बात का विश्वास है कि जहां तक समाजवादी अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध है वे संसार में अकेले नहीं हैं। बीस या पच्चीस वर्ष पहले वे अकेले थे परन्तु आज बहुत से आधुनिक राज्य समाजवादी ढांचे को अपनाये हुए हैं और कुछ अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्योंकि ऐसे राज्य में जनता की वाणी अभिभावी होती है, लोग युद्ध के खिलाफ और शांति के पक्षपाती होते हैं।

मेरे विचार में सोवियत संघ की इस नई विदेश नीति से इस संसार में शान्ति की स्थापना में सहायता मिलेगी।

भारत की अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति है और जहां तक इसके भावी समाज का सम्बन्ध है, भारत के समाज का रूप समाजवादी होगा। इसीलिये वह युद्ध के खिलाफ होगा और संसार में शांति बनाये रखने का समर्थक होगा।

प्राय: कहा गया है कि हमारी नीति तटस्थवाद की नीति है। यह एक मजबूरी की नीति नहीं है। बल्कि एक ऐसी क्रियात्मक नीति है जिसमें अगुआई और कार्यवाही के लिये पर्याप्त अवसर और स्थान है। मेरा यह पुख्ता विचार है कि हमारी नीति की नींव बहुत अच्छी तरह से रखी गई है और हम इस पर सफलतापूर्वक चले हैं। आज संसार में जो कुछ हो रहा है यदि वह उत्साहवर्द्धक है तो इसका एक कारण हमारी नीति है।

यह कहा जा सकता है कि आज हमारे सम्मुख लंका की, पाकिस्तान की, काश्मीर की, और ऐसी ही अन्य समस्यायें हैं। इस सम्बन्ध में मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि यदि काश्मीर समस्या पर बातचीत करनी है तो बेशक बातचीत कीजिये क्योंकि इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है कि इस समस्या का इस प्रकार समाधान हो जिससे दोनों पक्षों को श्रेय मिले। इन आठ वर्षों में हमारी यही कोशिश रही है। परन्तु यदि संयुक्त राष्ट्र संगठन में इसका निर्णय किया जाता है तो मैं प्रधान मंत्री से अनुरोध करूंगा कि वे इस पर विचार करें। हमारा यह कहना था कि पाकिस्तान आक्रमणकारी है और यह बात अवश्य ही घोषित की जानी चाहिये। जब तक इस बात की घोषणा नहीं होती तब तक हम कुछ भी कार्यवाही नहीं करना चाहते। परन्तु इसके साथ ही जिन समस्याओं का समाधान नहीं हो सका उनकी ओर हमारा दृष्टिकोण यही होना चाहिये कि बातचीत द्वारा और विचारों के आदान-प्रदान द्वारा उनका समाधान किया जाये।

मैंने दो सुझाव दिये हैं। एक पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं के निष्क्रमण के सम्बन्ध में है और दूसरा पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित करने पर जोर देने के सम्बन्ध में है। यह एक ऐसी बात है जिस पर हमारे और पाकिस्तान के भावी सम्बन्ध निर्भर हैं। यदि पाकिस्तान हमें आक्रमणकारी कहता है तब तो इस विवाद का एक बिल्कुल नया पहलू उत्पन्न होता है। मैं केवल इतना कहना चाहता हूं कि हमें घबराना नहीं चाहिये। हमें साहसपूर्वक और सम्मानपूर्वक स्थितियों का सामना करना चाहिये क्योंकि अन्त में यही हमारे लिये लाभप्रद होगा।

†प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : मुझे अक्सर इस सभा में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भाषण देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। इन अवसरों पर मैं प्राय: पहले कही बातों को दुहरा देता हूं क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि परिवर्तन शील संसार के कुछ पहलू इतने महत्वपूर्ण हैं कि वह सदैव ध्यान में रखे जाने होते हैं। इसलिये, यदि मैं इस अवसर पर भी किसी पहले कही गई बात को फिर से कहूं तो सभा मुझे क्षमा करेगी।

†मूल अंग्रेजी में

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कुछ समय पूर्व मैंने कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलों विशेषत: यहां आने वाले प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों से हुई बातचीत के सम्बन्ध में इस सभा में एक वक्तव्य दिया था । निस्सन्देह मैं उनको नहीं दुहराऊंगा, किन्तु उनमें से कुछ महत्वपूर्ण मामलों का पुन: जिक्र करूंगा ।

आचार्य कृपालानी ने यह कहने की कृपा की कि हमारी वैदेशिक नीति सिद्धांतत:—सामान्य उद्देश्यों और संभवत: कुछ सामान्य सफलताओं की दृष्टि से—ठीक रही, किन्तु कार्य रूप में, उसे क्रियान्वित करने के साधनों की दृष्टि से, हम भटक गये । विरोधी दलों के अन्य सदस्यों ने इस नीति की विभिन्न प्रकार से आलोचना की है ।

यह बिल्कुल सच है कि हमें अपनी वैदेशिक नीति में अथवा किसी भी अन्य नीति में हर जगह सफलता नहीं मिली है । हमें कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा और सम्भवत: और भी कई कठिनाईयों का सामना करना पड़े । हमें कई महत्वपूर्ण समस्याओं में कम सफलता मिली और यह भी सम्भव था कि यदि पहले कोई सचित कदम उठाया जाता तो उससे अच्छे परिणाम निकलते । नतीजा देख लेने पर संभलना आसान होता है । कुछ भी हो, मैं सभाको यह याद दिलाना चाहता हूं कि ये सभी तथा-कथित समस्यायें—छोटी समस्यायें—अकेली समस्यायें नहीं हैं । वे आधुनिक विश्व की कुछ आधारभूत समस्याओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । आप आधुनिक जगत के आधारभूत संघर्षों से किसी भी समस्या को कठिनता से ही पृथक् कर सकते हैं । इसलिये प्रत्येक छोटी समस्या का भी बहुत बड़ा परिणाम हो सकता है । इसलिये यह कल्पना करना कि हम किसी एक छोटी समस्या को अथवा किसी ऐसी समस्या को जिसका विशेष रूप से हम पर प्रभाव पड़ता है, दुनिया के अन्य पहलुओं से पृथक् रख कर हल कर सकते हैं, गलत है ।

अब मैं सभा का ध्यान पुन: उन अत्यन्त महत्वपूर्ण आधारभूत परिवर्तनों की ओर आकर्षित करूंगा जो कि विश्व में हुए हैं अथवा हो रहे हैं, और जो मेरा विश्वास है कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में विचारों की समस्त पृष्ठभूमि व कार्यों को बदल रहे हैं अथवा बदल देंगे । आप चाहे इसे किसी दृष्टिकोण से देखें—आप इसे प्रौद्योगिकी (टेक्नोलोजी) के विकास की चरमसीमा कह सकते हैं । जिससे अन्तत: अणु और हाइड्रोजन (उदजन) बम का आविष्कार और प्रयोग हुआ—मैं प्रोद्योगिकी के विकास के एक पहलू के रूप में हाइड्रोजन बम का जिक्र कर रहा हूं न कि उस पहलू का जो कि असंख्य व्यक्तियों को मृत्यु और विनाश के घाट उतारेगा । औद्योगिक युग की सभ्यता में प्रौद्योगिकी का यह विकास उस स्तर तक पहुंच गया है कि यह मानवता का अपरिमित विनाश कर सकता है अथवा उसका अत्यन्त हित कर सकता है । शक्ति की यह निकासी—मानवता इसका भला या बुरा, दोनों प्रकार से प्रयोग कर सकती है—आधुनिक विश्व के लिये एक नई बात है, जिसने कि पहली विचारधारा को बिल्कुल उलट दिया है । इससे सैनिक विचारधारा भी बदल गई है । इन नई बातों के कारण युद्ध शास्त्र पर लिखी गई सारी पुस्तकें गतकाल हो गई हैं । मैं समझता हूं कि मेरे इस विचार से अधिकांश व्यक्ति सहमत होंगे । किन्तु शायद यह बात न मानें कि इससे राजनैतिक विचारधारा भी बदल गई है, अथवा यदि हम अपनी संकीर्णता से बाहर निकलें, तो बदल जानी चाहिये । केवल इतना ही नहीं, इससे आर्थिक विचारधारा और वे सभी वाद भी बदल गये हैं जिनको हम पहले मानते थे । उनमें बहुत अंशों में सत्य था तथापि अब वे गतकाल हो गए हैं । मैं यह कहने का दुस्साहस कर सकता हूं कि मानवता के लिये उपलब्ध इस विशाल शक्ति के कारण हमारी सैनिक, राजनैतिक और आर्थिक विचारधारा बहुत अंशों में गतकाल हो गई है और जब तक हम अपने को इस नये युग के अनुसार जो कि आ रहा है नहीं ढाल लेते हम पीछे रह जायेंगे और इन नई स्थितियों

का लाभ उठानें व नये खतरों से अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं होंगे । यह एक महत्वपूर्ण आधारभूत बात है जिसे सदैव ध्यान में रखना चाहिये ।

इस नये विकास का एक परिणाम यह भी हुआ कि हिंसा और हिंसात्मक साधन इतने शक्तिशाली बन गये हैं कि वस्तुतः वे व्यर्थ हो गये हैं और यह कहना एक अजीब बात होगी कि वे अपनी सीमा लांघ गये हैं अर्थात् यदि वे और आगे बढ़े तो वे केवल व्यर्थ ही नहीं रहेंगे बल्कि विनाश करेंगे ।

युद्ध और निःशस्त्रीकरण का प्रश्न लीजिये । जो व्यक्ति सच्चे दिल से युद्ध इत्यादि समाप्त करना चाहते हैं अथवा कम से कम युद्ध की सम्भावनाओं को कम से कम करना चाहते हैं वे इस पर —निःशस्त्रीकरण पर— वर्षों से चर्चा करते रहे हैं । लेकिन वे भी एक नतीजे पर नहीं पहुंचे । क्यों ? क्योंकि अनिवार्य रूप से किसी अन्य पक्ष या विचारधारा के लोगों ने यह सोचा कि युद्ध से उन्हें लाभ पहुंचेगा, उनकी विजय होगी । उनका ख्याल था कि वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अपने विजय के अवसर तो नहीं खो देंगे । इसलिये वे निःशस्त्रीकरण के लिये तैयार नहीं हुए ।

मुझे यह कहना चाहिये कि विश्व के इतिहास में पहली बार लोगों के ध्यान में यह बात आई है कि युद्ध से—मैं बड़े पैमाने के युद्ध का जिक्र कर रहा हूं—आधुनिक स्थितियों में विजय प्राप्त नहीं होगी । यही कारण है कि इस समय नि-शस्त्रीकरण के प्रश्न पर, पहले से अधिक व्यावहारिक रूप में विचार किया जा रहा है अथवा विचार किया जायेगा । निस्सन्देह तर्क संगत और उपयुक्त दृष्टिकोण से युद्ध अवांछनीय है क्योंकि इससे कोई भी लक्षित उद्देश्य पूरा नहीं होता । इतना ही नहीं इसे—हाइड्रोजन बम के उपयोग के नतीजों के सम्बन्ध में हमें जो कुछ भी सीमित जानकारी है, उसके आधार पर—लगभग समस्त विश्व का विनाश हो जायेगा । ध्यान रखिए कुछ ऐसी अनिश्चित बातें हो सकती हैं जिनको हम नहीं जानते हैं तथापि जिनका इससे भी बुरा परिणाम हो सकता है । इस तरह एक व्यक्ति इसी तर्क संगत परिणाम पर पहुंचता है कि युद्ध को बिलकुल समाप्त कर दिया जाय ।

किन्तु माननीय सदस्य अच्छी तरह जानते हैं कि जीवन पूरी तरह युक्तिसंगत ढंग से नहीं चलता है । आवेश, घृणा, भय और आशंकायें मार्ग में रुकावटें डालती हैं । इसलिये आज पहले से बहुत अधिक हम इस बात का अनुभव करते हैं कि यद्यपि तर्क, बद्धि, और नेकनियत हमें एक मार्ग बताती है तथापि भय, आशंका और घृणा हमें—मेरा तात्पर्य हमारे देश से नहीं अपितु संसार से है—दूसरी दिशा में ले जाती है । कुछ भी हो, अन्ततः वास्तविकता से आंखें नहीं मूंदी जा सकती और वास्तविकता हमारे युग का प्रतीक है जिससे पीछे अणुबम, हाइड्रोजन बम और उनकी विशाल शक्ति है, युद्ध अथवा अन्य किसी रूप में विनाश की शक्ति है ।

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसे, मुझे भय है कि मैं बारम्बार दुहराता हूं । क्योंकि यह हमारे युग की संचालिका शक्ति है । और यह बात हमें केवल सैनिक क्षेत्रों में ही नहीं प्रत्युत राजनैतिक, और मैं फिर से दुहराता हूं, कि आर्थिक क्षेत्र में भी हमारा संचालन करती है वस्तुतः औद्योगिकी की अत्यधिक वृद्धि से, उसके अत्यधिक विकास से, धन, माल और आवश्यक चीजों की उत्पत्ति की अत्यधिक क्षमता से समस्त आर्थि क विचारधारा में क्रांति आ गई है ।

दो-तीन पीढ़ी पहले संभवतः कोई व्यक्ति, प्रत्येक व्यक्ति, के लिये वस्तुओं की इस प्रचुरता अथवा इसकी संभावना को भी नहीं सोच सकता था । लगभग सौ वर्ष पूर्व अर्थशास्त्री लोग अभाव के बारे में विचार करते थे तब एक अवधि ऐसी आयी जबकि लोग क्रमशः प्राचुर्य के बारे

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

में भी सोचने लगे। किन्तु वर्तमान प्रोद्योगिकी और वर्तमान विज्ञान के, धन उत्पन्न करने तथा अत्यधिक शक्तिशाली अस्त्रों को उत्पन्न करने की शक्ति ने व्यक्तियों और दार्शनिकों की कल्पनाओं को भी मात द दिया। लेकिन यह सब प्रौद्योगिकी विकास की ही दिशा में हुआ। चाहे आप इसे खुशी कहें अथवा विपत्ति और विनाश, सच यह है कि यह शक्ति उत्पन्न की गई और प्रयोग की जाने क लिये मानव हाथों में सौंप दी गई।

इसलिये इस पृष्ठभूमि में किसी भी उपयुक्त और युक्तिसंगत दृष्टिकोण को हिंसात्मक प्रकार के युद्ध और संघर्ष से अनिवार्यतः दूर रहना चाहिये। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि समाज में विभिन्न राष्ट्रों इत्यादि के बीच सामाजिक संघर्ष है। किन्तु इन छोटे या बड़े संघर्षों का हल हिंसात्मक रीति से निकालना अवांछनीय है। यदि उनका हल नहीं होगा तो बड़े पैमाने पर होने से दोनों का विनाश हो जायेगा छोटे पैमाने पर भी इन साधनों का प्रयोग करना खतरनाक है क्योंकि इससे बड़ा संघर्ष पैदा हो सकता है जिससे कि प्राचीन काल में दार्शनिकों और महात्माओं का यह कहना कि हिंसा और घृणा इत्यादि नैतिक रूप में बुरी हैं। यह बात इन समस्याओं पर विचार करने का एक अत्यधिक व्यावहारिक तरीका हो गया है।

नैतिकता को पृथक् रखते हुए भी, आज के अत्यन्त अवसरवादी और संकीर्ण दृष्टिकोण से भी हिंसा करना, चाहे वह बड़े पैमाने पर हो अथवा छोटे, बेवकूफी है। स्पष्ट है कि हिंसा छोटे पैमाने पर जारी रहेगी। क्रोध में एक व्यक्ति दूसरे से घृणा करता है। यह एक दूसरी बात है। मुख्य बात यह है कि प्राचीन महापुरुषों का उच्च नैतिक दृष्टिकोण आधुनिक युग के विकास का व्यावहारिक परिणाम बन गया है। यह पृष्ठभूमि है।

यदि ऐसा है तो शीत युद्ध की बातें, अथवा ऐसी कोई बात जिससे शीत युद्ध को प्रोत्साहन मिलता है, करना मूर्खता है। यह निरर्थक है क्योंकि शीत युद्ध, युद्ध का बातावरण तैयार करने की ओर एक कदम है शीतयुद्ध का तात्पर्य है घृणा और हिंसात्मक भावना की वृद्धि और सदैव युद्ध व हिंसा के लिये तैयार रहना। इसलिये ऐसा करने के लिये—जिसे आप नहीं करना चाहते—अपनी शक्ति व्यर्थ करना बेवकूफी है। इतना ही नहीं, यह निरर्थक है। आप भय इत्यादि के कारण ऐसा कर सकते हैं। लोगों के मन में यह संघर्ष सदैव चलता रहता है, किन्तु बुनियादी तौर से यह नीति गलत है और इस बात का युक्तिसंगत रीति से कोई विरोध नहीं कर सकता है।

हमने इस देश में जिस नीति को अत्यधिक सफलता से अपनाया है—मैं इसकी अद्भुत सफलता का दावा नहीं कर सकता किन्तु मैं पूर्ण आदर के साथ यह दावा अवश्य कर सकता हूं कि यह उपयुक्त दिशा की ओर है—वह उपयुक्त दिशा में काम करने का प्रयत्न है। इसमें गलतियां हो सकती हैं। कुछ छोटी बातों में गलतियां भी हुई हैं और इस कारण कुछ बड़ी बातों में भी गलतियां हो सकती हैं। किन्तु यह उपयुक्त बातों पर चाहे आप उन्हे कुछ भी कहें उपयुक्त तरीकों से जोर डालती है। इसलिये इसकी समस्त संसार के लोगों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई है। मैं इस समय राष्ट्रों का जिक्र नहीं कर रहा हूं यद्यपि राष्ट्रों में भी यह प्रतिक्रिया हुई है। हम कहते हैं कि हम सभी देशों के मित्र हैं—विभिन्न देशों से हमारी सहकारिता की मात्रा में अन्तर है क्योंकि यह एक द्विपक्षी मामला है। आप एकपक्षीय सहयोग नहीं कर सकते हैं किन्तु प्रत्येक देश के साथ—उन लोगों के साथ जोकि हमारे विरोधी हों अथवा जिनके साथ हमारी कुछ समस्यायें और विरोध भी हों उनके साथ भी हम मित्रता करने को सदैव तैयार रहते हैं।

कभी-कभी लोग हमारी तटस्थता का जिक्र कुछ घृणा के साथ करते हैं। मेरे विचार से हम तटस्थ नहीं हैं। हम किसी भी महत्वपूर्ण विषय के मामले में तटस्थ नहीं हैं, किन्तु तटस्थता के विषय

में बातें करने से लोगों की मनोभावना का अवश्य पता चल जाता है, अर्थात् वे सदैव युद्ध के बारे में ही विचार करते हैं। आखिर, तटस्थता का प्रयोग केवल युद्ध और संघर्ष में ही होता है। लोगों ने संसार में ऐसी वस्तुस्थिति विकसित कर ली है कि आप युद्ध मनोवृत्ति से बाहर नहीं निकल सकते हैं। आप युद्ध और तटस्थता के बारे में बातें किया करते हैं। युद्ध न होने अथवा शान्ति की स्थिति में 'तटस्थ' शब्द का प्रयोग बिल्कुल निरर्थक है। इसके कोई माने नहीं होते। इसका प्रयोग केवल इसलिये होता है कि वे आधुनिक विश्व में दो आधारभूत प्रवृत्तियों का विचार करते हैं। जिनका प्रतिनिधित्व अत्यधिक रूप में दो बड़े राष्ट्रों द्वारा किया जाता है और ये अत्यधिक रूप से एक दूसरे के विरोधी समझे जाते हैं और आपसे इस या उसके साथ सम्मिलित होने की आशा की जाती है। आपको विचार अथवा कार्य में अपना स्थान बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का विचार चाहे वह इस या उस किसी भी पक्ष के द्वारा किया जाय अनिवार्यत: तानाशाही ढंग से विचार करना है और यह अमिवार्यत: सैनिक रूप से युद्ध की बात सोचना है कि हम इस या उस ओर सम्मिलित हो जायें। मैं नहीं समझ सकता कि कोई भी समझदार व्यक्ति चाहे वह किसी मत का क्यों न हो—वह मुझ से मतभेद रख सकता है—प्रश्न को केवल सैनिक दृष्टिकोण से ही क्यों देखता है। यह इस युग का दुर्भाग्य है। भय और आशंकाओं के कारण ही लोग उत्तरोत्तर इसी सीमित सैनिक ढंग से सोचने लगे हैं। एक सैनिक अद्वितीय व्यक्ति होता है। आप उसे एक विशेष काम तथा युद्ध करना और शत्रु को पराजित करने को कहते हैं। वह यथा शक्ति इसे करने का प्रयत्न करता है, चाहे वह सफल हो या न हो किन्तु यदि राजनीति और इससे भी अधिक मानव जीवन में आप सदैव सैनिक के दृष्टिकोण से विचार करना प्रारम्भ करेंगे, तो, आप मुसीबत में पड़ जायेंगे। संसार इन कठिनाइयों में पड़ गया है क्योंकि हमारे राजनैतिक कार्यों में सैनिक विचारधारा, सैनिक शब्दावली और साधनों का प्रवेश हो गया है। किन्तु—तटस्थता के प्रश्न पर—जो व्यक्ति हमारे राजनैतिक और अन्य कार्यों को उस अर्थ में तटस्थ कहता है—मैं इसे पुन: जोर देकर कहना चाहता हूं—वह उन्हें समझने में बिल्कुल असफल रहा है। मैं उसे एक बार फिर समझने का प्रयत्न करने की सलाह दूंगा। मैं उसे अपने विचारों के संकीर्ण दायरे से जो कि सारे विश्व का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बाहर आने की सलाह दूंगा। विश्व के लिये यह वांछनीय है कि लोगों के विचारों में एक दूसरे से भिन्नता हो तब वे साथ-साथ मिलें और सहयोग करें मैं इस पृष्ठभूमि पर जोर देना चाहता हूं।

आज यदि आप मोटे तौर से यह जानना चाहते हों कि संसार की आधारभूत समस्यायें क्या हैं तो निस्सन्देह आधारभूत समस्या एक ही है जिससे अन्य छोटी-छोटी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं और वह समस्या है अणु शक्ति का प्रादुर्भाव। मैं इसको नि:शस्त्रीकरण की समस्या से सम्बद्ध रखूंगा जो कि बहुत महत्वपूर्ण है। मैं समझता हूं कि जो कारण मैंने बताये हैं उनसे ऐसा मालूम होता है कि नि:शस्त्रीकरण के सम्बन्ध में कुछ सफलता मिलने की कुछ अधिक आशा है। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिये है कि धीरे-धीरे यह समझा जाने लगा है कि उससे किसी को भी लाभ नहीं होता, वरन् वास्तव में हानि ही होती है। परन्तु, निस्सन्देह, मैं निश्चित तौर से कुछ नहीं कह सकता।

फिर, हाल के लिये संसार के एक अत्यन्त विस्फोटक क्षेत्र, पश्चिमी एशिया, इजराइल और अरब देशों के बीच संघर्षों, बगदाद संधि के क्षेत्र और ऐसे ही क्षेत्रों को ले लीजिये। यहां भी एक तरह से जो समस्यायें हैं वे महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं परन्तु वे संसार की समस्यायें नहीं हैं। परन्तु स्पष्टत: वे संसार की समस्याओं से ऐसे मिली हुई है कि यदि वहां किसी प्रकार की उथल-पुथल अथवा विस्फोट हुआ तो उससे संसार पर असर पड़ेगा और नहीं मालूम कि क्या न हो जाये। वास्तव में तथ्य यह है कि १९वीं सदी में कुछ यूरोपीय शक्तियों ने प्राय: समस्त संसार में आधिपत्य जमाकर एक प्रकार का संतुलन स्थापित कर लिया था। जो बहुत अच्छा नहीं था। प्रथम

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

विश्व युद्ध ने उस संतुलन को अनेक प्रकार से हिला दिया——राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से। कुछ साम्राज्य लुप्त हो गये। दो विश्व युद्धों के बीच का समय बड़ा संकटमय और कठिन था। सदा ही किसी प्रकार का संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वह असफल रहा। जब दूसरा विश्व युद्ध हुआ तो उससे १९वीं सदी का संतुलन और भी अधिक छिन्न-भिन्न हो गया। उसी समय से संसार में कुछ संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस बीच में अमेरिका और सोवियत संघ जैसी महान् शक्तियों के प्रादुर्भाव के अतिरिक्त यह अणुशक्ति भी आ गई जो कि संतुलन के मार्ग में एक अन्य बाधा है।

अब उन देशों की स्थिति, जो कि १९वीं सदी में बहुत महत्वपूर्ण थ, बहुत खराब हो गई है, या कम से कम उनका वैसा महत्व नहीं रहा है जैसा कि पहले था। उनके लिये अपने को नई विचार-धारा, संसार के नये संतुलनों, महान् शक्तियों के प्रादुर्भाव के अतिरिक्त एशिया की बौद्धिक क्रांति और एशिया के देशों का अपने भिन्न-भिन्न तरीकों से स्वतन्त्र होना, चाहे वह भारत हो, अथवा चीन अथवा इंडोनेशिया, अथवा बर्मा अथवा कोई भी अन्य देश आदि घटनाओं के अनुरूप बनाना सरल नहीं है। पुराने संतुलन बदलते जाते हैं और सरकारें आसानी से इन व्यावहारिक विकासों के साथ कदम नहीं मिला पातीं। निस्सन्देह परिवर्तनों को स्वीकार न करने के सम्बन्ध में प्रमुख तथ्य यह है कि कुछ बड़े देश अभी भी इस बात को नहीं समझते कि चीन भी अब एक बड़ी शक्ति हो गया है। वे इस बात को जानते अवश्य हैं परन्तु फिर भी उसे स्वीकार नहीं करते अन्यथा उनकी नीति कुछ भिन्न होती।

परन्तु प्रश्न केवल चीन का ही नहीं है। वास्तव में यह प्रश्न समस्त एशियाई समस्याओं अथवा अफ्रीकी समस्याओं पर दृष्टिकोण तथा उनके बड़ी शक्तियों द्वारा निर्णय किये जाने का है जिसमें एशियाई देशों से कोई परामर्श नहीं किया जाता। अब थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है और एशियाई देशों से भी परामर्श किया जाने लगा है चाहे वह इस कारण ही हो कि उन्हें परिषद् भवन के एक कोने में बैठने की अनुमति दे दी गई है। परन्तु आधारभूत तथ्य, मूल धारणा, अभी भी यह है कि समस्त विश्व, एशिया और अफ्रीका, का भार इन बड़े देशों के कन्धों पर ही और वे ही कर्णधार बने हुए हैं यद्यपि जागृत एशिया यह नहीं चाहता कि वे वह भार वहन करें।

इस तरह से कठिनाई यह है कि संसार में तो परिवर्तन होते जाते हैं परन्तु मनुष्य के मस्तिष्क में उसके अनुरूप परिवर्तन नहीं होता——वह पूर्ववत बना हुआ है। मैं किसी बाहर वाले को दोष नहीं देता हम सभी समान रूप से दोषी हैं। हम पुराने नारों को आज भी लगा रहे हैं जिनका कोई अर्थ अब नहीं रह गया है, फिर भी हम उन्हें दुहराये जा रहे हैं। विरोधीपक्ष के कुछ मित्र——श्री एच० एन० मुकर्जी——राष्ट्रमंडल और हमारी उसकी सदस्यता को नहीं भूल सकते। वह समझते हैं कि समस्त बुराई का जड़ यही है। मैं इस सम्बन्ध में अनेक बार निवेदन कर चुका हूं। मैं समझता हूं कि हम राष्ट्रमंडल के सदस्य अपने हित के लिये ही हैं। हम जिस नीति पर चल रहे हैं उसमें किसी प्रकार की बाधा उससे नहीं पड़ती वरन् कुछ सहायता ही मिल सकती है। हम राष्ट्रमंडल में इसलिये हैं कि हम अन्य देशों से हर प्रकार के सम्पर्क का स्वागत करते हैं यदि बह हमारी नीतियों में बाधक नहीं होता। एशिया तथा यूरोप के अन्य देशों से भी हमारा सम्पर्क है जो उतना ही निकट अथवा उससे भी अधिक है जैसा कि राष्ट्रमडलीय देशों से है। उदाहरणार्थ, बर्मा, इंडोनेशिया, यूगोस्लाविया आदि देशों से हमारे हर तरह से बहुत निकट सम्बन्ध है। याद रखिये चाहे किसी भी प्रकार की संधि हो उसमें कुछ प्रतिबन्ध अवश्य होता है। वह सहायक भले ही हो पर प्रतिबन्धित होती है। मैं राष्ट्रमंडल से इस प्रकार के सम्बन्ध का स्वागत करता हूं क्योंकि वह संधि नहीं है, क्योंकि उसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है और क्योंकि हम अपनी

इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। मैं चाहता हूं कि इस प्रकार का स्वतन्त्र सम्बन्ध संसार के समस्त देशों में स्थापित हो जाय। इस प्रकार का सम्बन्ध संधि-सम्बन्ध से बहुत अच्छा और सैनिक संधियों से कहीं अधिक अच्छा होता है जो कि आवश्यक रूप से कुछ देशों के प्रति विरोध के कारण होती है और उनसे मित्रता के मार्ग में अड़चनें पैदा होती हैं। इसलिये मैं लोक-सभा से निवेदन करूंगा कि इसका हमारे किसी देश के प्रति आसक्ति अथवा अनासक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। राष्ट्रमंडल में कुछ देश ऐसे हैं। जिनके साथ हमारे सम्बन्ध इस समय बहुत मित्रतापूर्ण नहीं हैं जैसे पाकिस्तान। मैं पाकिस्तान के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध चाहता हूं और भविष्य में कभी न कभी वैसा अवश्य हो जायेगा।

एक अन्य देश——दक्षिण-अफ्रीका को ले लीजिये जिससे हमारा बहुत सम्बन्ध नहीं है। दक्षिण अफ्रीका से हमारे सम्बन्ध प्रायः शून्य हैं। उससे हम पर कोई असर नहीं पड़ता। हमारे राष्ट्र मंडल में रहने या न रहने पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता सिवाय इसके कि भावावेश में कोई ऐसी वैसी बात कर दी जाये। परन्तु किसी राष्ट्र के हित में यह अच्छी बात नहीं है कि वह भावावेश में कोई कार्य करें।

ऐसा सोचा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका के साथ कार्य करना, संयुक्त राष्ट्र संघ में कार्य करना और उससे निकल जाना हमारे लिये कष्टकारी हो सकता है क्योंकि दक्षिण अफ्रीका और पुर्तगाल भी उसमें हैं। वह कष्टदायक हो सकता है। दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि हमारी उसमें उपस्थिति का अन्य पक्ष स्वागत न करें और उन्हें अपनी नीति का अनुसरण करना कष्टदायक लगे। जैसा भी हो, मेरा निवेदन है कि किसी भी देश से किसी भी प्रकार का सम्पर्क अच्छी चीज़ है यदि वह किसी भी तरह से हमारी किसी भी दिशा में प्रगति में बाधक न हो।

मेरे विचार में हमारा राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध निश्चय ही कुछ व्यापक हितों में, जिन्हें हम हृदय से चाहते हैं और जिनमें शान्ति का ध्येय भी है, लाभप्रद है। कल छः महीने बाद या नौ महीने बाद, मैं कह नहीं सकता अब कुछ अन्य देश भी राष्ट्रमंडल में आ जायेंगे और फिर बाद में गोल्ड कोस्ट और नाइजेरिया जैसे कुछ अफ्रीकी देश भी शायद राष्ट्रमंडल के सदस्य बन जायें। वह एक ऐतिहासिक महत्व का अवसर होगा जब गोल्ड कोस्ट जैसा एक अफ्रीकी देश पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगा और अन्य स्वतन्त्र तथा अपेक्षतया महत्वपूर्ण देशों में बराबर के देश के नाते कृत्य करेगा। हम इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देना चाहते हैं। हो सकता है कि हमारे वहां होने से अफ्रीका में विभिन्न परिवर्तनों को बढ़ावा मिले। यह सच है और माननीय सदस्यों ने मुझे याद दिलाया है कि राष्ट्रमंडल में या अफ्रीका में या अन्य किसी स्थान पर ऐसा क्यों हो रहा है। वे पूछते हैं "आप इस सम्बन्ध में क्या करेंगे"? हम अधिक कुछ नहीं कर सकते या सम्भवतः बहुत सी बातों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकते हैं। हम जिन बातों को पसन्द नहीं करते हैं उन सभी बातों की निन्दा करते रहना किसी सरकार के लिये या व्यक्तिगत रूप में मेरे लिये उचित नहीं होगा। यदि ऐसा हुआ तब तो मेरा सारा जीवन उन बातों की निन्दा करने म व्यतीत हो जायेगा जो मुझे पसन्द नहीं है। इसलिये ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें कोई व्यक्ति कहना नहीं चाहता है या इस संसार में करना नहीं चाहता है। जब तक ऐसी बात कह नहीं सकते या कर नहीं सकते जो लाभप्रद हो तब तक उन बातों के साथ निबाह करना ही होता है। इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी समय और आज के जमाने में विशेष रूप से हमारे लिये अपने मुख से या अन्य किसी रूप से किसी पर प्रहार करने की नीति अपनाना बुरा होगा। नये विचारों, नई सत्ताओं और इन सभी नई शक्तियों के काम करते हुए यह बहुत ही आवश्यक हो गया है कि मित्रता का क्षेत्र बढ़ाने के लिये और संघर्ष का क्षेत्र कम करने के लिये मित्रता के जितने भी सम्बन्ध स्थापित

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

किये जा सकें किये जायें। हमारी नीति इसी उद्देश्य पर आधारित है। हमारी अपनी जो समस्यायें हैं, यह स्वाभाविक ही है कि हमें उन्हें अपनी अधिकतम योग्यता के साथ निबटाना होगा यह भी ठीक है कि सिद्धांत के साथ व्यवहार को सदैव जोड़ना सम्भव नहीं होता है। कई बार सब से अच्छे ढंग के अनुसार इन बातों के अनुकूल स्वयं को बनाना पड़ता है परन्तु सिद्धांत, उद्देश्य और उपाय को सदैव मन में स्पष्ट रखना चाहिये और सिद्धांत को जन प्रयोजनों के लिये, लोगों को भ्रांत करने के लिये और विरोधी दिशा में जाने के लिये नहीं रखना चाहिये।

अब, हमारी तात्कालिक समस्यायें क्या हैं ? मैं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की बात कर रहा था और मैंने पश्चिमी एशिया, इसराइल, मिस्र और निःशस्त्रीकरण, बग़दाद सन्धि की चर्चा की थी। निःसन्देह दक्षिण पूर्वी एशिया संघ संगठन की समस्या भी है और चीन तथा इंडोचीन का प्रश्न भी है। संसार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या संसार के अल्पविकसित भागों का आर्थिक विकास है। यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बग़दाद सन्धि तथा सीटो के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना चाहता हूं। मैं इनकी पहले भी चर्चा कर चुका हूं। यह बात स्पष्ट है कि मैंने लोक-सभा के समक्ष जो विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है यदि वह पूर्णतः ठीक है तो सैनिक सन्धियों द्वारा कोई भी कार्यवाही, बग़दाद संधि और 'सीटो' जैसी कोई भी कार्यवाही एक ग़लत कार्यवाही है, एक खतरनाक कार्यवाही है। हानिकारक कार्यवाही है। इससे ग़लत प्रकार की सभी प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं और गतिशील होती हैं और ठीक प्रकार की प्रवृत्तियों को विकास करने से रोकती हैं। मेरे सिद्धांत गलत हो सकते हैं परन्तु यदि मेरे सिद्धांत ठीक हैं, तो इसका अनिवार्य रूप से यह अर्थ है कि आप किसी देश की बेईमानी पर या नेकनियती की कमी पर संदेह करते हैं या नहीं करते हैं मेरे लिये यह बहुत कम महत्व की बात है। आप उसकी नीति को धोखे की नीति मान सकते हैं। आपको प्रत्येक बात पर विचार करना चाहिये। परन्तु यदि आप संसार की कुछ बातों का ध्यान रखते हुए उचित नीति अपनाते हैं तो किसी विशिष्ट देश का पूरी ईमानदारी के साथ कार्य न करने से बहुत अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। आपको अपनी नीति में ईमानदार होना चाहिये और यदि आप ईमानदार हैं, आप स्पष्टवादी हैं तो आप ठोकर खा सकते हैं, गलती कर सकते हैं परन्तु मूल रूप से आप किसी गलती का शिकार नहीं बनेंगे। मेरे विचार में 'सीटो' और बग़दाद सन्धियां मूल रूप से गलत दिशा में कर्यवाहियां हैं और इनका हम पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और एक तरह से उनकी प्रवृत्ति दो या तीन दिशाओं से हमें घेरने की है। जैसा कि लोक-सभा को मालूम है, बगदाद सन्धि ने वस्तुतः पश्चिमी एशिया में पहले से इतना अधिक तनाव और संघर्ष पैदा कर दिया है जितना पहले कभी नहीं था। उसने निश्चित रूप से जो देश आपस में एक दूसरे के मित्र थे उन्हें एक दूसरे के खिलाफ कर दिया है। समझ में नहीं आता कोई यह कैसे कह सकता है कि इसने पश्चिमी एशिया में सुरक्षा और स्थायित्व स्थापित किया है।

बग़दाद और 'सीटो' के सम्बन्ध में माननीय सदस्य जानते ही हैं कि यह कहा जाता है कि ये उत्तरी या मध्य भाग की प्रतिरक्षा की कतारें हैं। और शायद इनका उद्देश्य यदि रूस संघ की ओर से कोई आक्रमण हो तो उससे रक्षा करना है। मैं इस बात की गारंटी नहीं दे सकता कि कौन देश आक्रमण करेगा और कौन नहीं। प्रत्येक बड़े और शक्तिशाली देश में प्रसार की और कुछ आक्रमण की प्रवृत्ति होती है। किसी 'दैत्य' के लिये यह बहुत ही कठिन होता है कि वह दैत्य के अनुरूप कार्य न करे। कोई भी यथासम्भव अपना बचाव कर सकता है, ऐसा वातावरण बना सकता है कि 'दैत्य' नरमी का व्यवहार करे या बिल्कुल ही आक्रमण न करे परन्तु यह तो 'दैत्य' के लिये एक

[स्व]भाविक बात है कि यदि वह कोई चीज़ नापसन्द करता है तो वह उसे बदलने के लिये किसी तरह अपनी शक्ति का उपयोग करने का प्रयत्न करता है। लेकिन निश्चय ही यह कल्पना कोई नहीं कर सकता कि पाकिस्तान सरकार इस सन्धि में इसलिये शामिल हुई कि उसे निकट या सुदूर भविष्य में सोवियत संघ के आक्रमण की आशंका थी। ऐसा बिल्कुल नहीं है। और यदि हम पाकिस्तान के समाचारपत्र पढ़ें और वहां के जिम्मेवार लोगों के वक्तव्य पढ़ें तो यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि उन्होंने ऐसा भारत के कारण किया——आप इसे यूं भी कह सकते हैं कि या तो वे भारत के प्रति शंकाशील हैं अथवा इसलिये कि वे ताकत के जोर पर भारत से बात कर सकें, जो कुछ भी हो, पाकिस्तान, 'सीटो' और बग़दाद संधि में भारत से अपनी शत्रुता के कारण शामिल हुआ है। मुझे खेद है क्योंकि मैं उनके साथ शत्रुता की बात नहीं सोच सकता और अत्यधिक निराश हुए बिना पाकिस्तान के साथ युद्ध का विचार नहीं कर सकता। किन्तु वहां यह बात है। मेरा अभिप्राय है कि लोग इस प्रकार की सन्धियां करते हैं, देश सन्धियां करते हैं, बगदाद सन्धि और 'सीटो' और मैं संसार के विभिन्न भागों की दूसरी सन्धियों का भी उल्लेख कर सकता हूं जो विभिन्न हेतुओं से की गई हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि बगदाद सन्धि के दूसरे सदस्यों का भारत से कोई वैर नहीं है। निस्सन्देह वे बगदाद सन्धि में इसलिये सम्मिलित नहीं हुए हैं, कि उन्हें भारत के विरुद्ध कुछ करना है, जैसा कि मुझे पूर्ण विश्वास है, कि पाकिस्तान इस सन्धि में केवल भारत के विरुद्ध लड़ने के उद्देश्य से सम्मलित हुआ है——भारत और संभवतः कुछ और देशों के विरुद्ध——अतः इसके यह विभिन्न हेतु हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के नेताओं ने मुझे जो आश्वासन दिया है, मैं उसे स्वीकार करने को बिल्कुल तैयार हूं। मुझे विश्वास है वे हमारा बुरा नहीं करना चाहते। वे संभवतः इस बारे में भारत की कल्पना भी नहीं करते। उनका ध्यान दूसरी ओर है, उत्तरी, पश्चिमी और मध्य रक्षा सन्धियों की ओर। किन्तु परिणाम एक ही है कि गठबन्धन हो जाता है। देशों का एक दूसरे से गठबंधन हो जाता है और प्रत्येक देश विभिन्न दिशाओं में खींचता है, और इस संकट में देश ऐसी ओर खींचे जाते हैं, जिनकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

दक्षिण पूर्व और पूर्व एशिया के समस्त प्रदेश में इन सन्धियों और सैनिक गठबन्धनों के क्रम को लीजिये। मैं कहूंगा कि ये सन्धियां और समझौते इन बड़े, अन्तर्राष्ट्रीय न्यासों और गठबन्धनों की तरह ही खराब हैं। हमें पक्का पता नहीं होता कि कौन कहां खींच रहा है। घटनायें होती हैं, किन्तु मालूम नहीं होता कि उनके लिये कौन उत्तरदायी है। किसी सन्धि के आवश्यक भय के अतिरिक्त, इसका यह भय होता है कि इन सन्धियों का कोई भी सदस्य ऐसी बात आरम्भ कर सकता है, जो उसके बाद, न केवल उस सन्धि के सदस्यों को खींच लेती है, किन्तु किसी दूसरी अन्तर-सम्बन्धित सन्धि के देशों को भी खींच लेती है, जिसके वे सांझे सदस्य होते हैं, और यह विप्लव का कारण बन जाता है। अतः स्वभावतः व्यापक कारणों और स्वहित के छोटे कारणों से, हम इन्हें अपवाद समझते हैं और बग़दाद तथा सीटो समझौतों को अपवाद मानते हैं। मैं दोहराना चाहता हूं कि हम यह समझते हैं कि वे सन्धियां संसार को ग़लत दिशा की ओर ले जा रही हैं। वे यह स्वीकार नहीं करते कि नवीन तत्व भी काम कर रहे हैं। इन नवीन तत्वों का लाभ उठाने के बजाय, जो निःशस्त्रीयकरण की ओर और तनाव कम करने तथा शान्ति की ओर तो जा रहे हैं, वे जानबूझ कर उनको रोकते हैं और दूसरे तत्वों को प्रोत्साहन देते हैं, जो घृणा, भय और सन्देह उत्पन्न करते हैं तथा निःशस्त्रीयकरण के लिये बाधक सिद्ध होते हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि कोई व्यक्ति सैनिक सन्धियों और समझौतों को कैसे निःशस्त्रीयकरण के दृष्टिकोण के बराबर समझता है।

दो प्रकार की सन्धियां और समझौते होते हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करूंगा, किन्तु मैं इस प्रकार के समझौते या सन्धि को समझ सकता हूं जो दो ऐसे देशों

[श्री जवाहरलाल नेहरू]
के बीच हो, जो एक दूसरे के विरोधी रहे हों या हैं। सामान्यतया इस प्रकार के समझौता का प्रायः उल्लेख किया जाता है, अर्थात् लोकारनो समझौता, क्योंकि १९२० की दशाब्दि के अन्तिम वर्षों में, लोकारनों में, सफल मित्र राष्ट्रों अर्थात् इंगलिस्तान, फ्रांस, अमरीका आदि ने प्रथम विश्वयुद्ध के अपने पुराने शत्रु जर्मनी के साथ समझौता किया। उसमें कुछ सार था, क्योंकि उसका उद्देश्य विरोधी देशों को मिलाना था, इसलिये इससे तनाव कम हुआ। उस समय मैं जेनेवा में था--मैं समझता हूं यह १९२६ की बात है---जब जर्मनी का पहली बार राष्ट्रसंघ में स्वागत किया गया था। निस्सन्देह भविश्य, और दूसरे विश्व युद्ध आदि के बारे में कुछ मालूम नहीं था। तथापि लोकरानो सन्धि हुई और जर्मनी उसमें सम्मिलित हुआ। उस समय राष्ट्र संघ हाल में जर्मन प्रतिनिधियों और फ्रांसीसी प्रतिनिधियों के बीच बड़ा स्नेह था।

इस प्रकार के समझौते का कुछ उद्देश्य होता था। यह आप को कुछ लाभ पहुंचाता है और एक आश्वासन देता है। यह प्रत्येक देश को एक आश्वासन देता है कि यदि उस वर्ग का कोई सदस्य विधि या सन्धि को तोड़ता है, तो दूसरे देश उसका विरोध करेंगे। यह प्रत्येक सदस्य को समान आश्वासन है। किन्तु दूसरे प्रकार के समझौतों में अर्थात् यदि एक ओर के प्रतिनिधि मित्र राष्ट्रों का वर्ग दूसरे के विरुद्ध अपने आप को बांधता है, तो प्रत्यक्ष रूप में इसका पहला प्रभाव यह होगा कि उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी, जिसके परिणाम स्वरूप मित्र राष्ट्रों का दूसरा वर्ग अपना दूसरे विरोधी वर्ग बना लेगा। इसमें हमें शान्ति या सुरक्षा बिल्कुल भी नहीं मिलती। मैं यह नहीं कहता कि आया यह उचित नहीं है, हो सकता है आत्म रक्षा के लिये किसी मामले में यह उचित हो, किन्तु साधारणतया, मुझे प्रतीत होता है कि यह हमें सुरक्षा आदि की उस भावना के निर्माण से दूर ले जायगा।

एक बड़ी बात यह है जिसका मैं उल्लेख करूंगा, अर्थात् संसार के अविकसित भागों के आर्थिक विकास का यह प्रश्न, जिसका राजनीतिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है, और सहायता देने या न देने के प्रश्न से घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्रयोग किये गये राजनीतिक दबाव, या प्रयुक्त किये गये सैनिक दबाव से घनिष्ठ सम्बन्ध है, और जिस पर न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से, बल्कि राजनीतिक दृष्टिकोण से भी प्रायः विचार किया जा चुका है।

यह बात स्पष्ट है कि यदि अत्यन्त धनी और निर्धन देशों में यह असंतुलन जारी रहा, तो दुःख और कष्ट का साधन बनने के अतिरिक्त, यह लगातार क्लेश और कलह का कारण बना रहेगा, और इससे झगड़े उत्पन्न होंगे, अतः धनी देशों की दृष्टि से इसका इलाज करना होगा। धनी देशों के लिये, उनके अपने दृष्टिकोण से और किसी दूसरे के दृष्टिकोण से, उन देशों को विकास के लिये सहायता देने, और इस असंतुलन को हटाने के लिये कोई बुरी बात नहीं है। किन्तु ऐसा करने के ढंग में बुराई का कुछ तत्व आ सकता है, और इसके परिणाम बुरे निकलते हैं।

इसके बारे में मैं एक प्रस्थापना का उल्लेख करूंगा, जिसके साथ भारत का कुछ समय से सम्बन्ध है, और जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने है, इस पर अभी विचार हो रहा है। मैं समझता हूं लगभग छः सप्ताह के अन्दर इस पर अग्रेतर विचार करने के लिये न्यूयार्क में बैठक होगी। इसे सनफेड कहा जाता है, जिसका अर्थ है आर्थिक विकास के लिये राष्ट्र की विशेष संघ निधि। इसमें 'विशेष' शब्द रखा गया था, यदि 'एस' शब्द इसमें न होता, तो यह 'अनफैड' बहुत बुरा होता। इसलिये इसे हटाने के लिये 'एस' वर्ण इसमें रखा गया है।

पिछले तीन या चार वर्षों में राष्ट्रसंघ में हमारे प्रतिनिधि हम से अनुरोध कर रहे हैं, जिसका यह अभिप्राय है कि अधिक अविकसित देशों को जो सहयता मिले वह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के द्वारा मिलनी चाहिये, और पारस्परिक व्यवस्था के द्वारा नहीं, जिसके राजनीतिक परिणाम हों। हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। बड़ी शक्तियां, चाहे वे कोई भी हों, इस बात को पसन्द नहीं करतीं। वे

निर्धन और आवश्यकता वाले देशों को सहायता देना पसन्द करते हैं, और अच्छा काम करने का केवल मानसिक संतोष ही प्राप्त नहीं करते, बल्कि यह भी संतोष चाहते हैं कि दूसरा व्यक्ति या देश यह जाने कि उसने उसके प्रति अच्छाई की है और हो सकता है उसके बदले में कुछ लें।

अब हम एक अवस्था में आ गये हैं, अब भी, यह निर्णय नहीं किया गया है, किन्तु हम एक ऐसी स्थिति में हैं, जहां, विभिन्न देशों से इस प्रस्थापना के बारे में उनकी प्रतिक्रिया पूछी गई है। और लगभग छः सप्ताह के अन्दर इन प्रतिवेदनों पर न्यूयार्क में विचार किया जायेगा।

मैं इसलिये इसका उल्लेख करता हूं, क्योंकि मैं सनफैड की इस प्रस्थापना को बड़ा महत्व देता हूं क्योंकि मुझे आशा है कि इससे धीरे-धीरे और पूर्णरूप में, सहायता देने और लेने वाले देशों के बीच एक भिन्न प्रकार का सम्बन्ध स्थापित होगा, जो दोनों के लिये लाभदायक होगा, सहायता लेने वाले के लिये निश्चित रूप में, किन्तु सहायता देने वाले को भी, क्योंकि उस अवस्था में यह अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा दी गई है, व्यक्तिगत रूप से नहीं, और यह एक देश द्वारा दूसरे देश को दी गई बख्शीश नहीं है और इसके साथ कोई राजनीतिक हेतु सम्बद्ध नहीं है।

अपनी बड़ी समस्याओं के बारे में, मैं अब विश्व की समस्याओं का उल्लेख नहीं कर रहा हूं, निस्सन्देह पाकिस्तान—काश्मीर की, और पूर्वी बंगाल से हिन्दुओं के अत्यधिक सामूहिक निष्क्रमण आदि की समस्यायें हैं। नहरी पानी और निष्क्रांत व्यक्तियों की भी दो बड़ी समस्यायें हैं। सीमा सम्बन्धी झगड़ों की एक और समस्या है। इसके अतिरिक्त और भी समस्यायें हैं। दक्षिण अफ्रीका की समस्या वहां के भारतीय उद्भव के लोगों की समस्या है। गोआ और श्रीलंका की भी समस्या है। मैं उनके रूप विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं करूंगा। सदस्य उनके बारे में अच्छी तरह जानते हैं।

पाकिस्तान के साथ हमारे जो झगड़े हैं उनके बारे से मैं कुछ कहूंगा।

हिन्द-चीन की समस्याओं से भी हमारा सम्बन्ध है क्योंकि वहां के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के हम सह-सभापति हैं, विशेष रूप से दक्षिण वियतनाम में कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं, क्योंकि वहां की वर्तमान सरकार जेनेवा करार से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्वों को इस आधार पर मानने से अस्वीकार करती है कि उन्होंने करार पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं। माना, कि उन्होंने उस पर हस्ताक्षर नहीं किये, परन्तु वह सरकार फ्रांसीसी सरकार के बाद आई है, जिसने उस पर हस्ताक्षर किये हैं। उस करार से जो लाभ हुए हैं उन सबको उन्होंने स्वीकार किया है तथा स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु, उन्होंने कोई उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं किया। इससे हमें बड़ी कठिनाई हो गई है क्योंकि हम जेनेवा करार के कारण ही हिन्द-चीन अथवा वियतनाम में हैं। यदि जेनेवा करार को स्वीकार नहीं किया जाता, तो हमारा वहां रहना बेकार है और हमें वापिस आ जाना चाहिये। वापिस आना सहज है परन्तु यदि अन्तर्राष्ट्रीय आयोग समाप्त हो जायेगा तो इससे कठिनाइयां उत्पन्न होने की सम्भावना है। वहां फिर से युद्ध छिड़ जायगा। हम नहीं चाहते और न ही और कोई चाहता है कि हम वापिस आ जायें। दक्षिण वियतनाम की सरकार भी चाहती है कि हम वहां रहें। परन्तु उन्होंने अपने उत्तरदायत्वों को नहीं माना इसलिये वहां रहना हमारे लिये कठिन हो गया है । इस विषय में मैंने विस्तारपूर्वक बातें कीं क्योंकि यहां पर तीन प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ अर्थात् श्री सिलवन लायड, श्री डलेस और श्री पिनू आये थे। मैं नहीं जानता कि क्या परिणाम निकलेगा। परन्तु हाल ही में, कुछ आशा प्रतीत होती है कि दक्षिण वियतनाम सरकार जेनेवा करार से उत्पन्न होने वाले उत्तरदायित्वों को स्वीकार कर लेगी और इस प्रकार हमारा वहां काम करना सहज हो जायेगा। हाल ही में, एक और कठिनाई उत्पन्न हो गई है जिससे हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं है। कम्बोडिया व्यवहारिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आयोग से निकल गया है और कुछ बल के साथ कह रहा है कि वह किसी गुट में सम्मिलित नहीं होगा और वह सब देशों से मित्रता बनाये रखना चाहता है। शायद, इसके कारण उसके

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कुछ पड़ौसियों, अर्थात् दक्षिण वियतनाम और थाईलैंड से, सम्बन्ध बिगड़ गये हैं। कारण कुछ भी हो, पर वहां पर सीमा बन्दी हो गई है और एक प्रकार की आर्थिक नाकेबन्दी हो गई है।

अब मैं पाकिस्तान सम्बन्धी समस्यायें लूंगा। सब कोई जानते हैं कि वहां से बड़ी संख्या में लोग आ रहे हैं। मैं नहीं जानता कि इस समय उसके बारे में सभा के समक्ष क्या कहूं। मेरे सहयोगी विधि और अल्पसंख्यक कार्य मंत्री ने, तथा पुनर्वास मंत्री ने सारी बातें विस्तार के साथ कह दीं हैं। स्पष्ट है कि लोगों का इतनी बड़ी संख्या में यहां आना बहुत बड़ी बात है। इसका हम पर बहुत बोझ पड़ेगा। परन्तु मैं समझता हूं कि इससे पाकिस्तान को भी बहुत नुकसान पहुंचेगा। उस देश को अन्त में क्या लाभ होगा? पूर्वी बंगाल से पहले जो लोग आये थे उससे पूर्वी पाकिस्तान को बड़ी हानि हुई थी। वहां उत्पादित वस्तुओं का गुण प्रकार घट गया है। प्रशिक्षत और कुशल व्यतियों के चले जाने से ऐसा होना स्वाभाविक है। संख्या का महत्व नहीं है, गुण प्रकार का महत्व होता है। पूर्वी पाकिस्तान से बहुत से योग्य व्यक्ति चले आये हैं।

यदि आप इतिहास की ओर देखें तो मालूम होगा कि इंग्लैंड के औद्योगीकरण का एक कारण यह भी था कि फ्रांस और यूरोप के उस भाग से बहुत से कुशल जुलाहे इंग्लैंड चले आये थे और इन्हीं के द्वारा धीरे-धीरे औद्योगीकरण हुआ और आविष्कार हुए। अतः यह समझना पाकिस्तान के लिये बड़ी अदूरदर्शिता होगी कि मकानों और सम्पत्तियों पर कब्जा कर, उनकी नौकरियों छुड़ा, लोगों को देश से बाहर निकालना उसके लिये कल्याणकारी होगा, जिन्होंने देश के आर्थिक जीवन में महत्व-पूर्ण कार्य किया है। मैं इसके राजनीतिक पहलुओं की बात नहीं कहता।

श्री गाडगील ने सुझाव दिया था कि हमें उनसे भूमि मांगनी चाहिये। आप मांग सकते हैं, परन्तु ऐसी वस्तुओं के मांगने का क्या लाभ, जो नहीं मिलेगी और जिन्हें प्राप्त करने के लिये और कोई उपाय नहीं है। कोई देश अपनी भूमि नहीं देता। वह क्यों देगा? यदि वह भूमि देने को तैयार हो, तो वह उसी पर उन लोगों को बसा सकता है। प्रश्न दूसरा है और इसका हल दूसरे तरीके से करना होगा।

इसमें सन्देह नहीं है कि पाकिस्तान में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि पाकिस्तान के नेता इन सब घटनाओं की महत्ता का अनुभव करने लग गये हैं। मैं नहीं समझता कि पाकिस्तान सरकार अथवा पूर्वी बंगाल की वर्तमान सरकार इसे प्रोत्साहित करना चाहती है। बहुत से छोटे पदाधिकारियों ने सम्भवतः इसे प्रोत्साहन दिया है। इसके अतिरिक्त आर्थिक दशाओं आदि के कारण भी ऐसा हुआ है। मैंने सभा का बहुत समय ले लिया है। परन्तु मैं काश्मीर के बारे में कुछ विस्तार के साथ कहना चाहता हूं। काश्मीर के बारे में पहले इतना अधिक कहा जा चुका है, इतने पत्र लिखे जा चुके हैं और इतने प्रतिवेदन दिये जा चुके हैं कि हमारे पास इन पत्रों के छपे हुए दस मोटे-मोटे ग्रन्थ हो गये हैं। इन सब की जानकारी रखना असम्भव है। अतः लोग कुछ मूल तत्व भूल जाते हैं। प्रमुख विदेशी पर्यवेक्षक और विदेशी समाचारपत्र जो अज्ञान प्रदर्शित करते हैं, उसे देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे मालूम नहीं कि यह अज्ञान जानबूझ कर प्रदर्शित करते हैं या अन्य किसी कारण।

अतः मैं कुछ प्रमुख तथ्यों की पुनरावृत्ति कर सभा को उनकी याद ताज़ी कराना चाहता हूं। यदि मैं प्रत्येक चीज़ का उल्लेख न करूं तो सभा मुझे उसके लिये क्षमा करे क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि लोग बाद में यह कहकर मेरी आलोचना करें कि 'मैंने इस चीज़ का ज़िक्र नहीं किया'। यह एक बड़ी लम्बी-चौड़ी कहानी है। किन्तु बुनियादी तौर से इसकी शुरूआत १९४७ के उत्तरार्द्ध से होती है जबकि पाकिस्तान से होकर और पाकिस्तान के द्वारा जम्मू तथा काश्मीर राज्य पर आक्रमण किया गया था। पाकिस्तान द्वारा इस आक्रमण के बारे में अब कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

बहुत सी बातों पर तर्क किया जा सकता है; हम एक बात कहेंगे और पाकिस्तान दूसरी। किन्तु कुछ तथ्य ऐसे हैं जिन पर कोई बहस नहीं की जा सकती। वे निश्चित तथ्य हैं। कुछ व्यक्ति हर बात पर बहस कर सकते हैं किन्तु विशद रूप से उन्हें निश्चित तथ्य समझा जाना चाहिये।

पहला निश्चित तथ्य यह है कि अक्तूबर १९४७ में पाकिस्तान ने आक्रमण किया था जिसका परिणाम यह हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में लोग मारे गये, तमाम बर्बादी और लूट-पाट हुई। सारे काश्मीर के मामले के बारे में यह प्रारम्भिक तथ्य है जिसे हमें याद रखना चाहिये क्योंकि बाद में जितनी भी चीजें हुईं उनकी जड़ यही थी और जो निर्णय किया जायेगा तथा काश्मीर की समस्या पर जो भी विचार किया जायेगा उसे करते समय हमें इस बुनियादी बात को ध्यान में रखना होगा।

काश्मीर के बारे में भारत की स्थिति को बिल्कुल अलग रखते हुए एक चीज तो बिल्कुल स्पष्ट ही है कि पाकिस्तान के लिये इस प्रकार का आक्रमण करना कोई भी औचित्य नहीं रखता।

दूसरी याद रखने वाली बात यह है कि विधिक और संवैधानिक रूप से पाकिस्तान भारत में मिला था। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुझे खेद है कि मेरा तात्पर्य काश्मीर से है। जिस गति से अथवा जिस प्रकार यह किया गया उसकी आलोचना कर सकते हैं किन्तु चूंकि विधिक और संवैधानिक रूप से जम्मू और काश्मीर राज्य भारत में मिला हुआ था। इस कारण काश्मीर की आक्रमण से रक्षा कर और आक्रमणकारियों को खदेड़ भगाना भारत संघ का कर्तव्य हो जाता है। यदि काश्मीर भारत में न भी मिला होता तो भी उसकी प्रतिरक्षा करना हमारा कर्तव्य होता। इस बात को कहने में मैं संवैधानिक तर्क प्रस्तुत करना चाहता हूं। ऐसा इसलिये कि भारत का अस्तित्व बराबर चला आ रहा है। भारत पहले भी था और आज भी है यद्यपि उसका कुछ भाग उससे अलग हो गया, जिसे पाकिस्तान कहते हैं। हमने इसके लिये पाकिस्तान जाने की छूट दे दी थी। जो लोग वहां नहीं जाना चाहते थे वे कुछ निर्णय हो जाने तक भारत में रहे। अतः जब तक पाकिस्तान अलग नहीं बन गया तब तक भारत के प्रत्येक भाग का उत्तरदायित्व भारत पर ही रहा। काश्मीर के भारत में मिलने के बारे में कोई अन्तिम रूप से निर्णय नहीं हुआ था किन्तु वह पाकिस्तान में भी नहीं था, इस कारण आक्रमण से उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो गया था। फिर भी यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह भारत में मिल गया है।

याद रहे कि यह सब हमारे स्वतन्त्रता प्राप्त करने के ३–४ महीनों बाद ही हुआ था। हम सैनिक कार्यवाही नहीं चाहते थे। कुछ फौजी दस्ते काश्मीर भेजने पड़े और मुझे स्मरण है कि इस प्रश्न से हम कितने अधिक चिंतित और व्यग्र थे। दो दिनों तक हम इस समस्या पर विचार करते रहे। इस समाचार मिलने के तीसरे दिन हमने प्रतिरक्षा समिति की बैठक की जिसमें घंटों तक इस पर विचार किया। हम बड़े धर्म संकट में फंसे थे। क्योंकि हम आसानी से काश्मीर की कोई सहायता नहीं कर सके थे। उस समय हमारे पास ठीक से विमान बल अथवा हवाई बेड़ा आदि नहीं था। तत्पश्चात् हमने डेढ़ दिन तक प्रतीक्षा की और जब विनाश और लूट-पाट का समाचार सुना तो हमारी प्रतिरक्षा समिति ने ६ बजे शाम को बड़ी कठिनाई से निर्णय किया कि हमें हस्तक्षेप करना होगा। यद्यपि यह कार्य बड़ा कठिन और खतरे से पूर्ण है। सारी रात कुछ फौजें भिजवाने की तैयारी की गई। कुल दो या तीन सौ आदमी भेजे गये थे। हमारे पास कोई भी हवाई बेड़ा नहीं था। सारे ग़ैर-सरकारी विमान मार्गों को रोक कर और उनका छः बजे प्रायः उनका उपयोग कर हमने लगभग २५० आदमियों को भेजा था।

यद्यपि हम यह जानते थे कि पाकिस्तान उन व्यक्तियों की सहायता कर रहा है फिर भी हमें यह पता नहीं था कि पाकिस्तान की सेना से हमारा आमना-सामना हो जायेगा। हम तो समझते थे कि हमें

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कबाइलियों से लड़ना पड़ेगा और उसके लिये २००-३०० आदमी काफी होंगे। शाम को ६ बजे यह निर्णय किया गया था और प्रातः ५ बजे इन लोगों को भेज दिया गया था। संगठित देश के लिये यह संख्या कुछ भी नहीं है किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त किये हुए हमें कुछ ही समय हुआ था इस कारण अस्थिरता थी और इतना ही कठिन काम था। ये लोग ऐन मौके पर पहुंचे थे। यदि इन्हें पहुंचने में १२ घंटे की भी देर हो जाती तो भी यह बहुत देर हो जाती। श्रीनगर शहर की यही दशा थी।

इसके बाद और चीजें हुईं और इन लोगों तथा कुछ और सेनाओं ने जो वहां पर गईं आक्रमण-कारियों को यूरी नामक स्थान तक खदेड़ भगाया। वहां उन्होंने देखा कि पाकिस्तानी सेनायें काश्मीर में अपने पैर जमाये हुए हैं। हमारी छोटी सी सेना के लिये इतनी बड़ी सेना का भगाना कठिन था। उसके बाद से भारतीय और पाकिस्तानी सेनाओं में मुठभेड़ें होती रहीं और ये कबाइली भाग गये।

हमने जब यह देखा, तो हमने इस पर काफी विचार किया। जैसा कि आप लोगों और सभा को विदित है, अन्ततोगत्वा हमने इसका उल्लेख सुरक्षा परिषद् को किया। ऐसा करने के लिये बहुत से लोगों ने हमारी आलोचना की है। घटना के पश्चात् हमें अक्ल आ जानी चाहिये। मेरे विचार से ऐसी ही कार्यवाही करना उचित था और मेरे मन में यह शंका नहीं है कि यह मामला सुरक्षा परिषद् में जाता ही, चाहे हम ले जाते अथवा और कोई।

†**श्री कामत** (होशंगाबाद) : क्या महात्मा गांधी ने इसके विरुद्ध राय दी थी ?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** माननीय सदस्य ने महात्मा गांधी का उल्लेख किया है। चूंकि माननीय सदस्य ने उनका नाम लिया है अतः मैं इस बारे में उनके विषय में कुछ कहना चाहूंगा।

काश्मीर में जब पहली बार यह हमला किया गया, जिसमें हमने अपने सिपाही भेजे थे, इससे मुझे बड़ी चिन्ता हुई। जिस वातावरण में हमारा पालन-पोषण हुआ है उससे हम सब युद्ध के विरोध में रहे हैं और इस प्रकार इधर-उधर युद्ध रोकने के लिये कूद पड़ने के कारण मेरे मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई। स्वाभाविक था कि मैं महात्मा गांधी के पास जाऊं और गया भी। मैं उन्हें इस मामले में घसीटना नहीं चाहता किन्तु जब तक वह जीवित थे, इससे सिवा और मैं कर ही क्या सकता था। उनकी सम्मति यह थी कि ऐसी परिस्थिति में भारत का यह कर्तव्य है कि वह अस्त्र शस्त्रों और सशस्त्र सेनाओं से सुसज्जित होकर काश्मीर की रक्षा करे।

†**श्री कामत :** मेरा प्रश्न तो संयुक्त राष्ट्र को उल्लेख करने के बारे में था।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू :** तत्पश्चात् जब हमने संयुक्त राष्ट्र में जाने के प्रश्न पर विचार कर लिया था या उस पर विचार कर रहे थे मुझे स्मरण है कि मैं उनके पास संयुक्त राष्ट्र के लिये तैयार किये प्रारूप को लेकर गया था उन्हें दिखाने के लिये और उसमें प्रयुक्त शब्दावली के बारे में राय लेने के लिये तो उन्होंने उसमें कुछ अपने सुझाव दिये जिन्हें हमने उसमें रखने का प्रयत्न किया।

इस मामले में गांधी जी की राय की आड लेना मेरे लिये उचित नहीं है और मैं नहीं चाहता कि सभा यह समझे कि मैं ऐसा कर रहा हूं। किन्तु चूंकि विरोधी दल के माननीय सदस्य ने अचानक उनका उल्लेख कर दिया। अत मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यह निर्णय उन्होंने नहीं वरन् हमने ही किया था किन्तु इस मामले में मैंने बराबर उनसे सम्पर्क रखा और उनकी राय लेता रहा। उस परिस्थिति में हमने उनकी राय के अनुसार अपने विचारों में परिवर्तन किया। जब यह मामला सुरक्षा परिषद् में पहुंचा उन्होंने लम्बे-ज्ञापन रखे और बाद में बड़े लम्बे चौड़े भाषणों द्वारा उनका समर्थन किया गया। इन ज्ञापनों में बड़े जोरदार शब्दों में यह कहा गया था कि पाकिस्तान ने न

†मूल अंग्रेजी में

तो कोई आक्रमण ही किया है और न उसने किसी को आक्रमण करने के लिये सहायता की है अथवा दुरुत्साहित ही किया है। हमने जो कुछ कहा था उसे बिल्कुल इन्कार कर दिया गया। यह करने के पश्चात् उन्होंने और-और झगड़े ला घुसेड़े—वे काश्मीर में नहीं वरन् दिल्ली, पंजाब एवं अन्य सब जगहों की मानवहत्या तथा जूनागढ़ और काठियावाड़ की कुछ अन्य रियासतों के बारे में बातें करने लगे।

वास्तव में ज्ञापन में अधिकांश बातें काश्मीर के मसले पर नहीं थीं, अन्य विषयों के बारे में थीं। उन्होंने सुरक्षा परिषद् से कहा है कि वह मानवहत्या आदि सब बातों पर काश्मीर की समस्या के साथ विचार करे। मैं यह सब इसलिये दुहरा रहा हूं कि पाकिस्तान का रवैया कैसा रहा। पहले तो उन्होंने सब कुछ अस्वीकार कर दिया और थोड़ी ही देर बाद उन सब बातों को स्वीकार किया तथा सुरक्षा परिषद् का ध्यान ऐसे विषयों पर दिलाने लगे जो उस सम्बन्ध में उत्पन्न नहीं होते। सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तानी प्रतिनिधि द्वारा कही गई झूठ बातों को सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। हमने उनके सामने तथ्य रखे और चित्र आदि दिखाये। सभा को मैं बतला दूं कि पिछले साल उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत, पाकिस्तान के प्रमुख व्यक्तियों ने वक्तव्य दिये कि उन्होंने किस प्रकार से पाकिस्तान से हमलों का संगठन किया। उन्होंने केवल ब्यौरे ही नहीं दिये अपितु संगठन में व्यय की गई राशि वापस लेने के लिये एक दल ने दूसरे दल से कहा। हाल ही में एक प्रमुख पदाधिकारी ने एक वक्तव्य दिया जिसमें यह बात स्वीकार की गई। मैं यह सब केवल इसलिये बता रहा हूं कि पाकिस्तान का मामला सुरक्षा परिषद् में कैसी बातों पर आधारित था। वह सब झूठ था। और उन्हें बाद में यह सब स्वीकार करना पड़ा। जब संयुक्त राष्ट्र आयोग वहां आया तो पाकिस्तान के लिये यह कहना ठीक हो गया कि उनकी फौजें वहां गई थीं। तब उन्होंने स्वीकार किया कि इनकी फौजें वहां थीं। यह चीज उन्होंने पहले स्वीकार नहीं की थी। यह बात वे संयुक्त राष्ट्र में वाद-विवाद के समय जो कुछ ही समय पहले वहां हो रहा था, कह सकते थे परन्तु उन्होंने नहीं कहा। उन्होंने तो दबाव में आकर ही स्वीकार किया जब कि सारी बातों का पता लगने वाला था। संयुक्त राष्ट्र संकल्प में १३ अगस्त, १९४८ को यह कहा गया था :

> "आयोग मानता है कि जम्मू और काश्मीर राज्य के क्षेत्र में फौजों की उपस्थिति से स्थिति में विशिष्ट परिवर्तन हो जाता है क्योंकि पाकिस्तान सरकार ने सुरक्षा परिषद् में कहा था कि पाकिस्तान सरकार उस राज्य से अपनी फौजें हटाने के लिये सहमत है।"

यह आयोग की सिफारिश थी। उसकी भाषा कोमल है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उन्होंने सुरक्षा परिषद् में झूठी बात कही और उन्होंने राज्य में सैनिक पाये। इसलिये जैसी स्थिति बताई गई थी उससे स्थिति में भिन्नता है। आयोग के लोगों ने निजी तौर से मुझ से कहा कि सारी झूठ बातें कही गई हैं और उन्होंने (पाकिस्तान ने) आक्रमण किया था परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि हम यहां मामले को शांति से सुलझाने के लिये आये हैं और यदि हम खुले तौर पर प्रत्येक की भर्त्सना करेंगे तो मामले को सुलझाना कठिन हो जायेगा। इसलिये आक्रमण के बारे में उन्होंने अपना निर्णय स्पष्ट रूप से नहीं किया। यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया था और परोक्ष रूप में हमसे कहा था।

हमें अब यह स्मरण रखना चाहिये कि इस आक्रमण को स्वीकार करने के कारण उन्होंने पाकिस्तान से कहा है कि वे उस राज्य के क्षेत्र से, जो उनके कब्जे में है, अपनी फौजें हटा लें। वे चाहते थे कि यह बात पहले की जाये। जनमत संग्रह और भारत द्वारा की जाने वाली कार्यवाहियों के बारे में बहुत चर्चा हुई परन्तु इस समस्त कालावधि में संयुक्त राष्ट्र ने पहली मांग यह की कि पाकिस्तान अपनी फौजें उस क्षेत्र में से हटा ले। अन्य बातें बाद में आईं। बाद में

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

हमसे कहा गया कि हम अपनी अधिकांश सेनायें, पाकिस्तान द्वारा उस क्षेत्र से सेना हटा लेने के बाद, हटा लें। हमसे कहा गया कि तनाव कम करने के लिये अपनी अधिकांश सेना हटा लें पर उस राज्य की सुरक्षा के लिये अपनी सेना वहां रखें। वहां हमारी सेनायें रखने का अधिकार मान लिया गया था परन्तु यह कहा गया था कि चूंकि पाकिस्तान जम्मू और काश्मीर राज्य से अपनी सारी सेनायें हटा रहा है, इसलिये भारत को भी अपनी सेनायें वहां कम कर देनी चाहियें जिससे अच्छा वातावरण उत्पन्न हो सके। हम से मानते हैं परन्तु सभा को स्मरण रखना चाहिये कि पाकिस्तान राज्य के उस क्षेत्र से अपनी फौजें हटाये जिस पर उन्होंने कब्जा कर रखा है। आज साढ़े आठ साल के बाद वे फौजें वहीं की वहीं हैं। जनमत संग्रह और अन्य बातों की चर्चा व्यर्थ है; ये प्रश्न तो तभी उठ सकते हैं जब पाकिस्तान अपनी फौजों को वहां से हटा ले जब तक पाकिस्तान जम्मू राज्य में उस भाग से जिस पर उसने आक्रमण किया है, अपनी फौजें नहीं हटाता जब तक वह कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं कर सकता। यह मुख्य बात है। पिछले कुछ सालों से संयुक्त राष्ट्र संकल्प में दी हुई बातों पर बहुत चर्चा हुई है। मैं उनका विस्तार से वर्णन नहीं करूंगा। मैं एक महत्वपूर्ण बात का उल्लेख कर चुका हूं। जनमत संग्रह करने से पूर्व बहुत सी शर्तें थीं। बहुत से प्रयत्न किये गये। किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला। दोष किसका था इसकी चर्चा मैं नहीं करूंगा। दरअसल बात यह है कि उनका कोई परिणाम नहीं निकला। बात यह है कि भारत सरकार और जम्मू तथा काश्मीर राज्य सरकार काश्मीर के बारे में अनिश्चित स्थिति में लगातार नहीं रह सकती थी क्योंकि कुछ तो करना ही था। कई वर्ष निकल गये और तब संविधान सभा का निर्वाचन करने तथा उसकी आयोजना करने के लिये भारत सरकार की सहमति से जम्मू और काश्मीर सरकार ने कुछ कार्यवाही की। उस समय भी हमने बताया था कि संविधान सभा वास्तव में किसी भी संविधान के बारे में, जिसे कि वह चाहे निर्णय करने के लिये स्वतन्त्र है किन्तु हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय बचनों के लिये हम बद्ध रहेंगे।

कई वर्ष निकल गये और जब एक ओर पाकिस्तान राज्य के उस भाग पर अधिकार जमाये बैठा है, जिस पर कि उसने आक्रमण किया था, दूसरी ओर संविधान सभा ने राज्य के लिये एक संविधान बनाया और भूमि सुधार के बहुत ही महत्वपूर्ण उपबन्ध बनाये, बड़े-बड़े विकास कार्य किये गये और उस भाग को छोड़ कर जिस पर कि पाकिस्तान ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया था, राज्य के व्यक्तियों ने उन्नति की। जम्मू और काश्मीर ने अपनी सरकार के अधीन इतनी उन्नति की जितनी कि उन्होंने पहले कभी नहीं की थी। इस बात का प्रमाण यही है कि पिछले वर्ष बहुत से यात्री काश्मीर गये। लगभग ५० हजार लोग वहां गये इतने व्यक्ति वहां पर कभी भी नहीं गये। लड़ाई के जमाने में भी नहीं गये। आठ अथवा नौ साल में बहुत से प्रमुख परिवर्तन हुए और काश्मीर के लोगों ने उन्नति की। दूसरे हिस्से में क्या हुआ और वहां परिवर्तन क्या हुए उसके बारे में मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। पाकिस्तान के गवर्नर जनरल अर्थात् वहां के प्रेसीडेंस ने बार बार कहा है कि वर्तमान शासन में जम्मू और काश्मीर आदि के लोग गुलामी का जीवन बिता रहे हैं, मुझे नहीं मालूम कि वे इतनी गैर-जिम्मेदारी की बातें क्यों करते हैं। जम्मू और काश्मीर की बातें छिपी नहीं हैं। वहां ५० हजार यात्री गये थे और यह स्पष्ट है कि उस राज्य ने इतनी उन्नति कभी नहीं की थी।

युद्धविराम रेखा के उस पार के लोगों की हालत क्या है इसके बारे में मैं नहीं कहना चाहता। किन्तु मैंने यह देखा है कि वहां से लोग इस ओर आना चाहते हैं ताकि वे राज्य की उन्नति का लाभ उठा सकें।

जब हम पाकिस्तान के प्रधान मंत्री से विभिन्न तरीके के बारे में चर्चा कर रहे थे इतने में एक नई बात हुई। अमरीका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने का वचन दिया और यह वचन बाद को पूरा किया इससे एक नई सैनिक और राजनीतिक स्थिति पैदा हो गई और जिस प्रकार हम कार्य कर रहे थे वह प्रक्रिया हमें बदलनी पड़ी। पाकिस्तान को सैनिक सहायता मिलने के कारण और सीटो तथा बगदाद समझौते के कारण स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ती गई। पाकिस्तान के प्रधान मंत्री और अन्य लोगों के साथ काश्मीर के प्रश्न पर चर्चा करते समय विधिक और सांवैधानिक प्रश्नों के साथ-साथ हमारे सामने यह व्यावहारिक पहलू भी रहा है कि हम चाहते हैं कि काश्मीर के लोगों की सुखसमृद्धि हो और वे स्वतन्त्र रहें। हम ऐसी कार्यवाही नहीं करना चाहते जिससे कि हानि हो और जिससे समस्त बातें अव्यस्थ हो जायें जिससे लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थानों में प्रव्रजन करना पड़े और जिसके कारण पाकिस्तान से फिर से संघर्ष हो। हम इसे हटाना चाहते थे क्योंकि यद्यपि हम चाहते थे कि काश्मीर की समस्या पाकिस्तान के साथ तय कर ली जाय परन्तु जब तय करने के तरीके से ही पाकिस्तान से झगड़े की संभावना हो तो काश्मीर समस्या कैसे सुलझ सकती थी। यह एक महत्वपूर्ण बात है क्योंकि अब बहुत कुछ बातें तय हो गई हैं और कुछ साल पहले जो कार्यवाही तर्कपूर्ण होती वह आज कठिन हो गई है क्योंकि इससे ऐसी बातों का परिवर्तन करना पड़ता जो विधिक और संवैधानिक रूप से लगभग निश्चित हो गई हैं।

जब पाकिस्तान के प्रधान मंत्री पिछली बार यहां आये थे तो हमने उनको ये बातें बताई थीं। मैंने उन्हें बताया कि आप मुझ से पिछले ५-६ सालों से संयुक्त राष्ट्र संकल्प में दी गई शर्तों के बारे में चर्चा कर रहे हैं। हममें कोई समझौता नहीं हुआ है। पाकिस्तानी फौजें वहां से वापस नहीं गईं। यदि आप चाहें तो हम इस विषय पर बातचीत कर सकते हैं परन्तु यह संभव नहीं कि हममें कोई शीघ्र समझौता हो जायेगा क्योंकि बहुत सी नई बातें आ गई हैं और हम ५-६ सालों से कोई समझौता नहीं कर पाये हैं। वे नई बातें अर्थात् सैनिक सहायता आदि बाद में आई जिन्होंने स्थिति में पूर्ण परिवर्तन कर दिया और हमें पहले की गई चर्चा को त्यागना पड़ा। क्योंकि चर्चा के आधार अर्थात् सैनिक पहलू तथा राजनैतिक पहलू में परिवर्तन हो गया है। मैंने उनसे कहा था आज जैसी स्थिति है उसे देखते हुए चर्चा करनी चाहिए प्रस्तुत तथ्यों को भुला पुरानी बातों के आधार पर चर्चा करने से कोई लाभ नहीं।

इसी बीच में एक और बात हुई हमारे जम्मू तथा काश्मीर राज्य के संविधान में संवैधानिक परिवर्तन हो गये हैं। सदस्यों को याद होगा कि हमने अपने संविधान में यह उपबन्ध किया है कि जम्मू और काश्मीर संविधान सभा की सहमति के बिना हम जम्मू तथा काश्मीर के किसी परिवर्तन से सहमत नहीं होंगे। यह संवैधानिक स्थिति है। मैंने पाकिस्तान के प्रमुख प्रतिनिधि से जो यहां आये थे यह बातें कही थीं।

मैं एक बात कहूंगा जिसका हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु काश्मीर के लोगों से परोक्ष सम्बन्ध अवश्य है। पश्चिम पाकिस्तान एक इकाई बन गया है। इन सब कारणों के परिणामस्वरूप मैंने पाकिस्तानी प्रतिनिधि को स्पष्ट कर दिया था कि यद्यपि इस प्रश्न के किसी भी पहलू पर चर्चा करने के लिये तैयार हूं परन्तु यदि वे वास्तविक होना चाहते हैं तो उन्हें परिवर्त्तन को मानना पड़ेगा और सात अथवा आठ सालों में जो कुछ हुआ उस पर विचार करना होगा। वे उन बातों पर चर्चा नहीं कर सकते जैसी वे आठ-नौ साल पहले थीं। उन्होंने यह स्थिति स्वीकार नहीं की और बात समाप्त हुई।

इसके बदले में जो बात हो सकती थी वह यह थी कि हमारी वार्ता में गतिरोध बना रहे। कुछ समय पहले हमने पाकिस्तान सरकार से युद्ध न करने की घोषणा के बारे में कहा था अर्थात् अपने

श्री जवाहरलाल नेहरू]

विवादों को तय करने के लिये भारत और पाकिस्तान किसी भी स्थिति में युद्ध नहीं करेगा इस बारे में उस समय के प्रधान मंत्री श्री लियाकत अली खां से काफी पत्र-व्यवहार हुआ किन्तु वे सहमत नहीं हुए उन्होंने कहा कि ऐसी घोषणा करने के पहले आपको सारे विचाराधीन प्रश्नों को सुलझाना पड़ेगा अथवा उन्हें मध्यस्थ निर्णय आदि द्वारा सुलझाने के लिये सहमत होना पड़ेगा। मैंने उनसे कहा कि इन्हें सुलझाने के लिये मैं सहमत हूं परन्तु विभिन्न प्रयत्न करने पर भी हम सफल नहीं हुए। मैंने सोचा था कि युद्ध न करने की घोषणा करने से एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जायेगा जिससे हमें उन प्रश्नों के सुलझाने में सहायता मिलेगी। मैंने उनसे कहा कि जब आप यह कहते हैं कि विवाद के प्रश्नों को सुलझाने के विषय में एक निश्चित प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिये बाध्य हो जायें तो विवाद का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। जब विवाद उत्पन्न होता है तो समझौते, मध्यस्थता, आदि में चार अथवा पांच महीने लग जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि राजनैतिक अथवा अन्य ऐसे प्रश्न को सुलझाने के लिये जो भविष्य में उत्पन्न हो मध्यस्थ निर्णय द्वारा सुलझाने के लिये कोई राज्य वचन बद्ध नहीं होगा। जब हम अपनी सार्वभौमिक सत्ता को इस प्रकार सीमित कर लेते हैं तो उच्च राजनीति के मामले भी सीमित हो जाते हैं जिन पर केवल सम्बन्धित देश ही विचार कर सकते हैं। बहुत से प्रश्न ऐसे होते हैं जो इस प्रकार से तय किये जा सकते हैं अतएव यह बुद्धिमत्तापूर्ण बात नहीं होगी कि हम भविष्य में की जाने वाली कार्यवाही के लिये वचनबद्ध हो जायें। इसके बाद बात समाप्त हुई।

अब पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने इस विषय की फिर चर्चा की और मैं उनके प्रस्ताव का स्वागत करता हूं। परन्तु यह स्पष्ट है कि युद्ध न करने की घोषणा से हमें वचनबद्ध नहीं हो जाना चाहिये जब कि उसके साथ विभिन्न प्रकार की शर्तें संलग्न हों। इससे वही दुष्टयक् आरम्भ हो जाता है—आप पहले सारे मामले तय करिये और बाद में युद्ध न करने की घोषणा करिये। यदि ये सब बातें तय हो जायें तो युद्ध न करने की घोषणा और मध्यस्थ निर्णय के लिये वचन बद्ध होने की आवश्यकता ही न रहे। मैं सभा से और पाकिस्तान सरकार से सारी बातें स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं। काश्मीर के प्रश्न पर जिसके पीछे हम नौ साल से पड़े हुए हैं और जिसका जम्मू तथा काश्मीर के लोगों पर, भारत के लोगों पर, हमारे संविधान और सार्वभौमिक सत्ता के ऊपर, तथा हमारे महत्वपूर्ण हितों पर प्रभाव पड़ रहा है, हम किसी बाहरी सत्ता द्वारा मध्यस्थ निर्णय करने के लिये सहमत नहीं हो सकते।

†**कुछ माननीय सदस्य** : ..... नहीं

†**श्री जवाहरलाल नेहरू** : मुझे समझ में नहीं आता। महत्वपूर्ण प्रश्नों को इस प्रकार निबटाने के लिये कोई देश सहमत नहीं हो सकता। हां यह मैं समझ सकता हूं कि हम और पाकिस्तान इस बात के लिये सहमत हो जायें कि हम एक दूसरे से युद्ध नहीं करेंगे और हम अपनी समस्यायें शांतिपूर्ण ढंग से सुलझायेंगे चाहे वे कुछ समय तक न सुलझें। युद्ध करने से तो यह अच्छा है कि हमारी कुछ समस्यायें निलम्बित पड़ी रहें। अतएव युद्ध न करने की घोषणा एक वांछित वस्तु होगी। एक बात और कह दूं, पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से कहा है कि सीमावर्ती झगड़ों में से प्रत्येक झगड़े में भारत अपराधी था। बहुत से झगड़े हुए और मैं प्रत्येक की चर्चा नहीं कर सकता। कम से कम दस झगड़ों के बारे में जो कि जम्मू की सीमा पर हुए थे, संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों ने कहा है कि पाकिस्तान ने आक्रमण किया था। मैं उनकी बात मानता हूं। मैं फिर से वही बात कहूंगा जो मैंने कुछ दिन पहले निकोवाल की दुर्घटना के बारे में वक्तव्य देते हुए कही थी। निकोवाल घटना एक ज्वलंत उदाहरण है, इसलिये नहीं कि इसमें १२ व्यक्ति मारे गये थे परन्तु इसलिये कि

†मूल अंग्रेजी में

[पा]किस्तान सरकार में इसके सम्बन्ध में अच्छा व्यवहार नहीं किया है। जब हमें इस घटना के बारे में [सं]युक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों का प्रतिवेदन मिला उस समय पाकिस्तान गणराज्य के वर्तमान [रा]ष्ट्रपति दिल्ली में थे। उन्हें और प्रधान मंत्री को वह प्रतिवेदन दिया गया था। उन्होंने हमें आश्वासन दिया तथा प्रधान मंत्री ने जनता से घोषणा की कि संयुक्त राष्ट्र के पर्यवेक्षकों द्वारा जो व्यक्ति अपराधी पाये जायेंगे उन्हें डंड दिया जायगा। इसका विरोध पाकिस्तान नहीं कर सकता क्योंकि वह हमारी राय नहीं थी यह तो संयुक्त राष्ट्र के पर्यवेक्षकों द्वारा की गई जांच के बाद दी गई राय थी। उन्होंने स्वयं ही कहा था कि वे अपराधियों को दंड देंगे। एक साल से ज्यादा बीत चुका है परन्तु मुझे आश्चर्य है कि कुछ भी नहीं किया गया है। मुझे यह सुनकर और भी आश्चर्य है कि ऐसे वक्तव्य दिये जायें कि इन घटनाओं में हमने आक्रमण किया था। मैंने सभा का बहुत समय से लिया है परन्तु मैं काश्मीर की चर्चा कुछ विस्तार में करना चाहता था और कुछ मूल तथ्य बताना चाहता था। मुझे आशा है कि पाकिस्तान सरकार और वहां की जनता इन आधारभूत तथ्यों पर विचार करेगी और मानेगी कि हम पाकिस्तान का बुरा नहीं चाहते। पाकिस्तान का बुरा चाहना ही बुरा है क्योंकि हमारी समृद्धि का उनकी समृद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम उनके मित्र बनना चाहते हैं। हम समस्त समस्याओं को मित्रतापूर्वक तय करना चाहते हैं। और मुझे विश्वास है कि यदि हमने इस ढंग से काम किया तो हम उन्हें तय कर लेंगे।

†**श्री एन० सी० चटर्जी** (हुगली) : अध्यक्ष महोदय पहले की तरह प्रधान मंत्री में आदर्शवाद और उच्च सिद्धांतों की बातें नहीं की हैं परन्तु वास्तविक बातें की हैं।

परन्तु मुझे यह देख कर निराशा हुई कि उन्होंने पाकिस्तान से आने वाले असंख्य विस्थापित व्यक्तियों के बारे में कुछ नहीं कहा। कल विधि मंत्री ने भी स्वीकार किया कि उन्हें अपने कार्यों में असफलता हुई है तथा वे इस मामले में बिल्कुल असहाय हैं।

कुछ दिन पहले मैंने प्रधान मंत्री को एक पत्र लिखा था और कहा था कि पाकिस्तान से विस्थापित व्यक्तियों के आने के दो कारण हैं। पहला कारण तो श्री गजनफर अली खां द्वारा सीमाबन्दी के नारे में दिया गया वक्तव्य है। दूसरा कारण पाकिस्तान का संविधान है जिसने अल्प संख्यक हिन्दुओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बना दिया। मुझे उन विस्थापित व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिला है। उनमें से बहुत से लोग नामशूद्र हैं। वे ऊंची श्रेणी के भद्र लोग नहीं हैं। वे किसान हैं। १९५० में भी इन लोगों ने पाकिस्तान नहीं छोड़ा। जहां पर जयसूर खुलना और फरीदपुर जिले मिलते हैं वहां पर लगभग १५ लाख नामशूद्र रहते हैं ये खुद अपना बचाव कर सकते हैं। रेडक्लिफ पंचाट के प्रकाशित होने के बाद मैं नामशूद्र नेताओं के साथ महात्मा गांधी से मिला और कहा कि उस क्षेत्र में हिन्दुओं का बहुमत है और फिर भी वह पाकिस्तान में मिलाया जा रहा है। इस बारे में कुछ नहीं किया गया।

पूर्वी बंगाल में तीन चार बातें ऐसी हो गई हैं जिनसे हिन्दुओं के लिये वह स्थान सुरक्षित नहीं रह गया है। वहां गांव प्रतिरक्षा दल बनाये गये हैं। इन्हें रात्रि में तलाशी लेने का अधिकार है। जब हिन्दुओं के घर में चोरी होती है तो ये हिन्दुओं के घर में घुस जाते हैं जिससे हिन्दुओं की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। जो चोरों को पकड़ने जाते हैं वे खुद चोर बन जाते हैं।

एक बड़ी विचित्र बात की गई है। उन पर विशेष कर लगाया जाता है जो गांवों के प्रतिरक्षा दल के लिये संघ शुल्क में जोड़ दिया जाता है। पुलिस कठिनाईयां पैदा कर रही है। न्यायाधीशों से भी उन्हें न्याय नहीं मिलता। वहां के मुख्य मंत्री श्री सरकार अल्पसंख्यकों की सहायता करना चाहते हैं। श्री गाडगील ने कहा था कि पाकिस्तान से भूमि मांगी जाये। प्रधान मंत्री में हिम्मत नहीं है कि वे भूमि मांगें इस समय सरदार पटेल जैसे व्यक्ति की आवश्यकता है। विभाजन के समय भूमि पाकिस्तान